

INTERNATIONAL JOURNAL FOR LEGAL RESEARCH AND ANALYSIS



Open Access, Refereed Journal Multi Disciplinary
Peer Reviewed

www.ijlra.com

DISCLAIMER

No part of this publication may be reproduced, stored, transmitted, or distributed in any form or by any means, whether electronic, mechanical, photocopying, recording, or otherwise, without prior written permission of the Managing Editor of the *International Journal for Legal Research & Analysis (IJLRA)*.

The views, opinions, interpretations, and conclusions expressed in the articles published in this journal are solely those of the respective authors. They do not necessarily reflect the views of the Editorial Board, Editors, Reviewers, Advisors, or the Publisher of IJLRA.

Although every reasonable effort has been made to ensure the accuracy, authenticity, and proper citation of the content published in this journal, neither the Editorial Board nor IJLRA shall be held liable or responsible, in any manner whatsoever, for any loss, damage, or consequence arising from the use, reliance upon, or interpretation of the information contained in this publication.

The content published herein is intended solely for academic and informational purposes and shall not be construed as legal advice or professional opinion.

**Copyright © International Journal for Legal Research & Analysis.
All rights reserved.**

ABOUT US

The *International Journal for Legal Research & Analysis (IJLRA)* (ISSN: 2582-6433) is a peer-reviewed, academic, online journal published on a monthly basis. The journal aims to provide a comprehensive and interactive platform for the publication of original and high-quality legal research.

IJLRA publishes Short Articles, Long Articles, Research Papers, Case Comments, Book Reviews, Essays, and interdisciplinary studies in the field of law and allied disciplines. The journal seeks to promote critical analysis and informed discourse on contemporary legal, social, and policy issues.

The primary objective of IJLRA is to enhance academic engagement and scholarly dialogue among law students, researchers, academicians, legal professionals, and members of the Bar and Bench. The journal endeavours to establish itself as a credible and widely cited academic publication through the publication of original, well-researched, and analytically sound contributions.

IJLRA welcomes submissions from all branches of law, provided the work is original, unpublished, and submitted in accordance with the prescribed submission guidelines. All manuscripts are subject to a rigorous peer-review process to ensure academic quality, originality, and relevance.

Through its publications, the *International Journal for Legal Research & Analysis* aspires to contribute meaningfully to legal scholarship and the development of law as an instrument of justice and social progress.

PUBLICATION ETHICS, COPYRIGHT & AUTHOR RESPONSIBILITY STATEMENT

The *International Journal for Legal Research and Analysis (IJLRA)* is committed to upholding the highest standards of publication ethics and academic integrity. All manuscripts submitted to the journal must be original, unpublished, and free from plagiarism, data fabrication, falsification, or any form of unethical research or publication practice. Authors are solely responsible for the accuracy, originality, legality, and ethical compliance of their work and must ensure that all sources are properly cited and that necessary permissions for any third-party copyrighted material have been duly obtained prior to submission. Copyright in all published articles vests with IJLRA, unless otherwise expressly stated, and authors grant the journal the irrevocable right to publish, reproduce, distribute, and archive their work in print and electronic formats. The views and opinions expressed in the articles are those of the authors alone and do not reflect the views of the Editors, Editorial Board, Reviewers, or Publisher. IJLRA shall not be liable for any loss, damage, claim, or legal consequence arising from the use, reliance upon, or interpretation of the content published. By submitting a manuscript, the author(s) agree to fully indemnify and hold harmless the journal, its Editor-in-Chief, Editors, Editorial Board, Reviewers, Advisors, Publisher, and Management against any claims, liabilities, or legal proceedings arising out of plagiarism, copyright infringement, defamation, breach of confidentiality, or violation of third-party rights. The journal reserves the absolute right to reject, withdraw, retract, or remove any manuscript or published article in case of ethical or legal violations, without incurring any liability.

मानवाधिकारों के संरक्षण में छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग की प्रभावशीलता: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

लेखक - ¹नम्रता पटेल, ²डॉ. अज़ीम खान

शोधार्थी, शोध-निर्देशक

विधि विभाग, कलिंगा विश्वविद्यालय, नया रायपुर (छत्तीसगढ़), भारत

सार

यह शोध छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग की मानवाधिकार संरक्षण संबंधी भूमिका, प्रभावशीलता तथा संस्थागत चुनौतियों का विधिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यकों के संवैधानिक अधिकारों की रक्षा में आयोग की कार्यप्रणाली, शिकायत निवारण प्रणाली तथा प्रशासनिक दक्षता का मूल्यांकन करना है। शोध में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 एवं 30, छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1996 (अनुकूलित एवं संशोधित), न्यायालयों के प्रमुख निर्णयों तथा आयोग के वार्षिक प्रतिवेदनों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आयोग ने अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, किन्तु इसकी अनुशंसाओं की गैर-बाध्यकारी प्रकृति, स्वतंत्र जांच तंत्र का अभाव, सीमित वित्तीय एवं प्रशासनिक संसाधन तथा स्थानीय प्रशासन पर अत्यधिक निर्भरता इसकी प्रभावशीलता को सीमित करते हैं। पाँच वर्षों के शिकायत आँकड़ों के विश्लेषण से निस्तारण दर में क्रमिक गिरावट तथा संवेदनशील क्षेत्रों में मानवाधिकार संरक्षण की व्यावहारिक चुनौतियाँ भी सामने आती हैं। अध्ययन निष्कर्षतः आयोग को अधिक स्वायत्त, उत्तरदायी एवं प्रभावी बनाने हेतु विधायी संशोधन, स्वतंत्र जांच प्रकोष्ठ, पर्याप्त वित्तीय संसाधन तथा अनुशंसाओं के प्रभावी अनुपालन की आवश्यकता पर बल देता है, जिससे राज्य में अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों का वास्तविक संरक्षण सुनिश्चित किया जा सके।

मुख्य शब्द: छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग, मानवाधिकार संरक्षण, धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यक, संवैधानिक अधिकार.

1. परिचय

छत्तीसगढ़ राज्य में धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यक समुदायों के मानवाधिकारों के संरक्षण, सामाजिक-आर्थिक उत्थान तथा उनके संवैधानिक हितों की सुरक्षा हेतु स्थापित विधिक तंत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अत्यंत विशिष्ट है। छत्तीसगढ़ राज्य का निर्माण 1 नवंबर 2000 को मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 के अंतर्गत किया गया था।³¹ अविभाजित मध्य प्रदेश के समय, प्रांतीय स्तर पर अल्पसंख्यकों के कल्याण और अधिकारों की निगरानी के लिए *मध्य प्रदेश राज्य अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1996* (अधिनियम क्रमांक 7 सन 1996) प्रवृत्त था। राज्य विभाजन के पश्चात नवीन छत्तीसगढ़ राज्य के समक्ष यह तात्कालिक विधिक आवश्यकता थी कि वह अपने भौगोलिक क्षेत्राधिकार के भीतर अल्पसंख्यकों के अधिकारों को अक्षुण्ण रखने के लिए एक वैधानिक निकाय की निरंतरता सुनिश्चित करे। विधायी शून्यता को दूर करने के लिए छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 79 के तहत प्रदत्त शक्तियों का उपयोग किया गया। इसके अंतर्गत राज्य सरकार ने 'छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग अनुकूलन आदेश, 2002' जारी किया, जिसके माध्यम से मूल मध्य प्रदेश अधिनियम को आवश्यक संशोधनों और स्थानीय अनुकूलन के साथ संपूर्ण छत्तीसगढ़ राज्य में प्रवृत्त किया गया। इस विधायी अनुकूलन का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 के तहत गारंटीकृत सांस्कृतिक व शैक्षणिक अधिकारों तथा अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकारों के सिद्धांतों का क्षेत्रीय स्तर पर बिना किसी व्यवधान के क्रियान्वयन किया जा सके।

2. शिकायतों के निस्तारण एवं प्रशासनिक व्यवस्था की प्रक्रिया

छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग के समक्ष मानवाधिकारों के उल्लंघन और संवैधानिक अधिकारों के हनन से जुड़े मामलों के निस्तारण की प्रक्रिया एक निश्चित विधिक और प्रशासनिक मार्ग का अनुसरण करती है। विधि न्यायशास्त्र का यह स्थापित सिद्धांत है कि विधिक प्रक्रिया की सरलता और निष्पक्षता ही किसी वैधानिक निकाय की न्यायप्रदात्री क्षमता को निर्धारित करती है। छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1996 (अनुकूलित, 2002) की धाराओं तथा आयोग की नियमावली के अंतर्गत शिकायत दर्ज होने से लेकर अंतिम अनुशंसा जारी होने तक की प्रक्रिया को पाँच प्रमुख विधिक चरणों में विभाजित किया जा सकता है, जिसका व्यावहारिक स्वरूप आयोग के वार्षिक प्रतिवेदन (2024-25) के साक्ष्यों से पुष्ट होता है।

- प्रथम चरण: शिकायत का पंजीकरण एवं स्वतः संज्ञान
- द्वितीय चरण: प्रारंभिक संवीक्षा एवं क्षेत्राधिकार का निर्धारण
- तृतीय चरण: नोटिस एवं समन जारी करना

- चतुर्थ चरण: अर्ध-न्यायिक सुनवाई एवं साक्ष्य ग्रहण
- पंचम चरण: अंतिम अनुशांसा एवं अनुपालन की निगरानी

3. राज्य में अल्पसंख्यक समुदायों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति

छत्तीसगढ़ राज्य में अल्पसंख्यक समुदायों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन करना राज्य में मानवाधिकारों के संरक्षण की वास्तविक गहराई को समझने के लिए अनिवार्य है। विधि न्यायशास्त्र और लोक नीति के स्थापित सिद्धांतों के अनुसार, नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रताओं का वास्तविक उपभोग तब तक संभव नहीं है जब तक कि नागरिकों को आर्थिक और सामाजिक न्याय प्राप्त न हो। राष्ट्रीय स्तर पर गठित सच्चर समिति (2006) और रंगनाथ मिश्र आयोग की विधिक रिपोर्ट्स ने यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया था कि अल्पसंख्यक समुदाय अक्सर सामाजिक-आर्थिक मुख्यधारा के विकास से पिछड़कर हाशिए पर चले जाते हैं। छत्तीसगढ़ जैसे जनजातीय बाहुल्य और विशिष्ट भौगोलिक संरचना वाले राज्य में, जहाँ कुल अल्पसंख्यक आबादी मात्र 4.727 प्रतिशत है, मुख्यधारा के विकास, रोजगार और जीवन स्तर में इन समूहों की वर्तमान स्थिति अत्यधिक विविधता और संस्थागत चुनौतियों को प्रदर्शित करती है।

मुख्यधारा के विकास और शैक्षणिक स्तर के दृष्टिकोण से, छत्तीसगढ़ के अल्पसंख्यकों में समुदायवार व्यापक भिन्नता दिखाई देती है। जैन और सिख समुदाय राज्य के सबसे समृद्ध, शहरीकृत और उच्च सांख्यिकीय साक्षरता दर वाले वर्ग हैं, जो व्यापार, वाणिज्य और उच्च विधिक व प्रशासनिक सेवाओं में सुदृढ़ स्थिति में हैं। इसके विपरीत, मुस्लिम समुदाय का एक बड़ा हिस्सा और सुदूर ग्रामीण अंचलों में निवास करने वाले ईसाई व बौद्ध समूह सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़ेपन का सामना कर रहे हैं। राज्य अल्पसंख्यक आयोग के वार्षिक प्रतिवेदन (2024-25) के आधिकारिक विधिक साक्ष्यों के अनुसार, अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक विकास और मुख्यधारा से अलगाव को दूर करने के लिए स्कूल शिक्षा विभाग के माध्यम से उर्दू शिक्षाकर्मियों के 440 पद स्वीकृत किए गए हैं, जो यह प्रमाणित करता है कि भाषायी और धार्मिक स्तर पर पिछड़े अल्पसंख्यक क्षेत्रों में बुनियादी विधिक व शैक्षणिक विकास पहुंचाने की तात्कालिक आवश्यकता बनी हुई है।

4. आयोग के समक्ष प्राप्त शिकायतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग के मानवाधिकार संरक्षण संबंधी वैधानिक दायित्वों की वास्तविक प्रभावशीलता को मापने की अंतिम विधिक कसौटी उसके समक्ष प्राप्त होने वाली शिकायतों के निपटारे की दर और उनकी प्रकृति का सांख्यिकीय मूल्यांकन है। विधि न्यायशास्त्र का यह स्थापित सिद्धांत

है कि केवल अधिकारों की विधायी घोषणा पर्याप्त नहीं है, बल्कि पीड़ितों को प्राप्त होने वाला त्वरित विधिक उपचार ही किसी संस्था की न्यायप्रदात्री क्षमता को प्रमाणित करता है।

सारणी 4.1: विगत 5 वर्षों में प्राप्त शिकायतों की प्रकृति एवं निस्तारण की विधिक स्थिति

वित्तीय वर्ष	कुल पंजीकृत शिकायतें	मुस्लिम समुदाय	ईसाई समुदाय	जैन/सिख/अन्य	कानून व्यवस्था संबंधी मुद्दे	शैक्षणिक एवं सेवा संबंधी मुद्दे	निष्पादित मामले	लंबित मामले	निस्तारण दर प्रतिशत
2020-21	22	16	4	2	8	14	14	8	63.63%
2021-22	28	19	6	3	11	17	19	9	67.85%
2022-23	24	18	4	2	7	17	15	9	62.50%
2023-24	19	15	2	2	5	14	11	8	57.89%
2024-25	16	13	1	2	3	13	9	7	56.25%
कुल योग	109	81	17	11	34	75	68	41	62.38%

Source: cgsccommission.com

छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग के विभिन्न वर्षों के आधिकारिक वार्षिक प्रशासनिक प्रतिवेदनों (अंतिम प्रतिवेदन वर्ष 2024-25 सहित) से प्राप्त प्राथमिक साक्ष्यों के विधिक संरेखण में पिछले पांच वर्षों के सांख्यिकीय आंकड़ों का विश्लेषणात्मक अध्ययन राज्य में अल्पसंख्यक मानवाधिकारों की वास्तविक जमीनी स्थिति को उजागर करता है। विगत पांच वित्तीय वर्षों (वित्तीय वर्ष 2020-21 से वित्तीय वर्ष 2024-25 तक) के दौरान आयोग के विधिक कक्ष में पंजीकृत नवीन मामलों, उनके समुदायवार व प्रकृतिवार वर्गीकरण तथा अंतिम निस्तारण की दर का सुस्पष्ट सांख्यिकीय विवरण नीचे दी गई सारणी में प्रस्तुत है। पांच वर्षीय सांख्यिकीय सारणी 4.1 का विधिक एवं विश्लेषणात्मक मूल्यांकन करने पर कई ऐसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त होते हैं जो इस शोध प्रबंध की मुख्य परिकल्पना (Hypothesis) को वैधानिक रूप से प्रतिपादित करते हैं।

समुदायवार संवेदनशीलता का प्रतिमान: पांच वर्षों के संकलित आंकड़ों के साक्ष्य दर्शाते हैं कि आयोग के समक्ष प्राप्त कुल 109 शिकायतों में से सर्वाधिक 81 मामले (74.31 प्रतिशत) अकेले मुस्लिम समुदाय से संबंधित हैं। इसका मुख्य कारण मुस्लिम समुदाय का राज्य के शहरी और मैदानी जिलों (जैसे रायपुर, दुर्ग, बिलासपुर) में घनीभूत जनसांख्यिकीय संकेंद्रण होना तथा उनके भीतर विधिक साक्षरता की तुलनात्मक अधिकता है, जिसके कारण वे आयोग के मुख्यालय तक अपनी शिकायतें पहुंचाने में सक्षम हैं। इसके विपरीत, ईसाई समुदाय से प्राप्त कुल 17 शिकायतें मुख्य रूप से सुदूर वनांचलों से संबंधित हैं,

जहाँ विधिक साक्षरता की कमी के कारण अनेक गंभीर मामले आयोग के पंजीकरण तंत्र तक पहुँच ही नहीं पाते।

5. प्रमुख प्रकरणों का विशिष्ट अध्ययन

छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग के आधिकारिक वार्षिक प्रतिवेदन (2024-25) में दर्ज वास्तविक और संकलित विधिक प्रकरणों के प्रकाश में निम्नलिखित चुनिंदा मामलों की व्यावहारिक समीक्षा राज्य में अल्पसंख्यक मानवाधिकारों के संरक्षण की वास्तविक जमीनी हकीकत को रेखांकित करती है:

प्रकरण क्रमांक 1: भाषायी मानवाधिकार एवं प्रबंधकीय स्वायत्तता का संरक्षण

निलोफर खान बनाम स्वामी आत्मानंद अंग्रेजी माध्यम विद्यालय जामुल (जिला- दुर्ग)

शिकायतकर्ता निलोफर खान, जो कि भाषायी अल्पसंख्यक वर्ग से संबंधित थीं, दुर्ग जिले के अंतर्गत संचालित स्वामी आत्मानंद अंग्रेजी माध्यम शासकीय विद्यालय में एक विशिष्ट संविदा पद पर कार्यरत थीं। स्थानीय स्कूल प्रबंधन और जिला शिक्षा प्रशासन द्वारा उनके विधिक नियुक्ति अनुबंध के विपरीत, अंग्रेजी माध्यम के स्वीकृत पद के विरुद्ध उन्हें हिंदी माध्यम की कक्षाओं में अध्यापन कार्य करने के लिए निरंतर प्रशासनिक रूप से बाध्य किया जा रहा था, तथा ऐसा न करने पर सेवा समाप्ति और वेतन रोकने की मानसिक व प्रशासनिक प्रताड़ना दी जा रही थी।

इस शिकायत पर प्रारंभिक संवीक्षा के पश्चात, आयोग की पीठ ने इसे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29(1) के तहत भाषायी पहचान व सम्मान की रक्षा तथा अनुच्छेद 21 के तहत गरिमापूर्ण रोजगार के अधिकार (मानवाधिकार) का सीधा उल्लंघन माना।^{9,14} आयोग ने अपनी अर्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए संबंधित जिला शिक्षा अधिकारी (DEO) दुर्ग और शासी निकाय के प्राचार्य को व्यक्तिगत रूप से लोक अभिलेखों के साथ रायपुर मुख्यालय में तलब करने के लिए वैधानिक समन जारी किए। नियमित विधिक सुनवाई के बाद, आयोग ने स्कूल प्रबंधन के प्रशासनिक आदेश को विधिक रूप से त्रुटिपूर्ण पाते हुए उसे तत्काल निरस्त करने तथा शिक्षिका को उनके मूल अंग्रेजी माध्यम के पद पर ही बिना किसी उत्पीड़न के बहाल रखने का कड़ा आदेश जारी किया।

प्रकरण क्रमांक 2: सामाजिक-आर्थिक न्याय एवं प्रशासनिक लापरवाही की जांच

अंजुम आरा बनाम लाल बहादुर शास्त्री शासकीय अस्पताल सुपेला (भिलाई)

यह शिकायत चिकित्सा लापरवाही और सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर अल्पसंख्यक परिवार

के बुनियादी स्वास्थ्य मानवाधिकारों के हनन से संबंधित थी। शिकायतकर्ता के प्रसव के दौरान शासकीय अस्पताल के ड्यूटी डॉक्टरों और पैरामेडिकल स्टाफ द्वारा गंभीर चिकित्सा लापरवाही और संवेदनहीनता बरती गई, जिसके परिणाम स्वरूप जच्चा-बच्चा की असामयिक मृत्यु हो गई। स्थानीय पुलिस और स्वास्थ्य विभाग के जिला अधिकारियों द्वारा इस गंभीर मामले पर कोई निष्पक्ष जांच या प्राथमिक उपचार दर्ज नहीं किया जा रहा था।

आयोग ने इस मामले को संज्ञान में लेते हुए स्वास्थ्य महानिदेशालय तथा संबंधित मुख्य चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अधिकारी (CMHO) को कारण बताओ नोटिस जारी कर विस्तृत तथ्यात्मक एवं पोस्टमार्टम प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। आयोग ने अपनी सुनवाई में अस्पताल प्रबंधन को कड़ी फटकार लगाई और पीड़ितों के मानवीय अधिकारों की अवहेलना के लिए उत्तरदायी स्वास्थ्य कर्मियों के खिलाफ उच्च स्तरीय विभागीय जांच संस्थित करने तथा पीड़ित परिवार को अंतरिम वित्तीय सहायता प्रदान करने की अनुशंसा राज्य के लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय को प्रेषित की।

प्रकरण क्रमांक 3: सुदूर अंचलों में धार्मिक स्वतंत्रता एवं सामाजिक बहिष्कार का संकट

बस्तर और सरगुजा संभाग के संवेदनशील वनांचलों से प्राप्त शिकायतों (जैसे नारायणपुर और जशपुर के ग्रामीण क्षेत्र) के संयुक्त विधिक विश्लेषण के अनुसार, यदि कोई स्थानीय जनजातीय परिवार अपनी स्वेच्छा से ईसाई धर्म अपनाता है, तो पारंपरिक ग्राम सभाओं द्वारा पेसा कानून (PESA Act) के प्रावधानों की आड़ में उनका पूर्ण सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार कर दिया जाता है। इन परिवारों को बुनियादी मानवीय आवश्यकताओं जैसे पेयजल, राशन दुकानों और महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) के रोजगार से विधिक रूप से वंचित करने की शिकायतें आयोग के समक्ष दर्ज कराई गईं।

इन संवेदनशील मामलों में जब आयोग ने स्थानीय जिला कलेक्टरों और पुलिस अधीक्षकों (SPs) को जांच प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के निर्देश जारी किए, तो स्थानीय पुलिस प्रशासन ने बहुसंख्यक सामाजिक-राजनीतिक दबाव या कानून व्यवस्था बिगड़ने के भय से इन मामलों को गंभीर मानवाधिकार उल्लंघन मानने की बजाय साधारण 'पारंपरिक और पारिवारिक भूमि विवाद' बताकर अत्यंत शिथिल और रक्षात्मक रिपोर्टें आयोग के समक्ष प्रस्तुत कीं। चूंकि आयोग के पास अपनी कोई 'स्वतंत्र विधिक जांच विंग' या क्षेत्रीय पुलिस दस्ता नहीं है, इसलिए उसे स्थानीय प्रशासन की इसी एकतरफा रिपोर्ट पर निर्भर रहना पड़ा, जिसके कारण सुदूर अंचलों के पीड़ितों को कोई वास्तविक विधिक संरक्षण प्राप्त नहीं हो सका। यह व्यावहारिक समीक्षा यह अकाट्य साक्ष्य प्रस्तुत करती है कि जब तक छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम में संशोधन करके आयोग को जमीनी स्तर पर स्वतंत्र जांच करने और आदेशों की

अवहेलना करने वाले जिला अधिकारियों को सीधे दंडित करने की विधिक शक्तियां नहीं दी जातीं, तब तक संवेदनशील अंचलों में अल्पसंख्यकों के धार्मिक मानवाधिकारों का वास्तविक संरक्षण संभव नहीं हो सकेगा।

6. उच्च न्यायालयों एवं सर्वोच्च न्यायालय के महत्वपूर्ण निर्णय

भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून संपूर्ण देश की प्रशासनिक और विधिक व्यवस्था के लिए बाध्यकारी है। छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग के संदर्भ में जब हम अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों के संरक्षण की व्यावहारिक समीक्षा करते हैं, तो आयोग की अर्ध-न्यायिक शक्तियों का अनुप्रयोग और उसके क्षेत्राधिकार की विधिक सीमाएं न्यायपालिका द्वारा प्रतिपादित निम्नलिखित मील का पत्थर साबित होने वाले न्यायिक दृष्टांतों के विधिक प्रकाश में और अधिक सुस्पष्ट हो जाती हैं:

टी.एम.ए. पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002) 8 SCC 481

यह ग्यारह न्यायाधीशों की संविधान पीठ द्वारा दिया गया भारत के संवैधानिक इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णय है।¹⁴ इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह शाश्वत विधिक सिद्धांत प्रतिपादित किया कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत 'धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों' का निर्धारण 'राष्ट्रीय स्तर' पर संपूर्ण देश की जनसंख्या के आधार पर नहीं, बल्कि 'राज्य के स्तर' पर संबंधित राज्य की कुल जनसांख्यिकी के अनुपात में किया जाना चाहिए।

बाल पाटिल बनाम भारत संघ (2005) 6 SCC 690

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अल्पसंख्यक आयोगों के गठन के मूल विधिक उद्देश्यों की व्याख्या की थी। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अल्पसंख्यक का दर्जा किसी समुदाय को केवल सांख्यिकीय रूप से कम होने के कारण नहीं, बल्कि समाज में उसके सामाजिक-आर्थिक व शैक्षणिक पिछड़ेपन तथा बहुसंख्यक समाज के आत्मसातीकरण के दबाव के विरुद्ध वैधानिक संरक्षण प्रदान करने की विधिक आवश्यकता के आधार पर दिया जाना चाहिए।¹⁷ यह निर्णय छत्तीसगढ़ अल्पसंख्यक आयोग को बस्तर और सरगुजा के सुदूर अंचलों में सामाजिक न्याय (खंड 4.10) सुनिश्चित करने के लिए प्रेरित करता है।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग बनाम भारत संघ (2010)

विभिन्न उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के सुसंगत विधिक निर्णयों के अनुसार, यह स्थापित किया गया है कि राज्य अल्पसंख्यक आयोगों को राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 और

प्रांतीय कानूनों के तहत सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की अर्ध-न्यायिक शक्तियां (समन जारी करना, लोक अभिलेख मंगाना) तो प्राप्त हैं, परंतु वे 'अदालत के समानांतर' अपनी स्वतंत्र न्यायपालिका नहीं चला सकते। न्यायालयों ने बार-बार यह स्पष्ट किया है कि जब तक किसी विशिष्ट राज्य अधिनियम में दंडात्मक अवमानना की शक्ति का सुस्पष्ट विधायी प्रावधान न हो, तब तक अल्पसंख्यक आयोगों द्वारा जारी किए गए अंतिम आदेश और निर्णय राज्य सरकार या शासकीय विभागों के लिए विधिक रूप से बाध्यकारी नहीं बल्कि केवल सलाहकारी प्रकृति के माने जाएंगे।

पी. ए. इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2005) 6 SCC 537

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 30(1) के तहत प्राप्त अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों की प्रबंधकीय स्वायत्तता की सीमाओं का निर्धारण किया। न्यायालय ने यह विधिक सिद्धांत प्रतिपादित किया कि राज्य सरकार अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं में शैक्षणिक मानकों को बनाए रखने, शिक्षकों की न्यूनतम योग्यताएं तय करने और किसी भी प्रकार के वित्तीय गबन या कुप्रबंधन को रोकने के लिए उचित नियामक कानून बना सकती है।²⁸ परंतु राज्य इन नियमों की आड़ में संस्थान के आंतरिक प्रशासन और प्राचार्यों की नियुक्ति की प्रबंधकीय स्वतंत्रता को पूरी तरह से छीन नहीं सकता।

6. आयोग की कार्यप्रणाली का आलोचनात्मक एवं व्यावहारिक मूल्यांकन

छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग के मानवाधिकार संरक्षण संबंधी वैधानिक प्रतिज्ञापत्र की वास्तविक सफलता का आलोचनात्मक और व्यावहारिक मूल्यांकन करना इस शोध प्रबंध की परिकल्पना को सिद्ध करने के लिए अत्यंत अनिवार्य है। विधि न्यायशास्त्र का यह एक बुनियादी सिद्धांत है कि अधिकारों की रक्षा के लिए बनाए गए वैधानिक निकाय केवल अपने कानूनी पाठ से नहीं, बल्कि व्यावहारिक धरातल पर आने वाली प्रशासनिक अड़चनों को दूर करने की अपनी क्षमता से आंके जाते हैं। छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग के विभिन्न वर्षों के प्रशासनिक प्रतिवेदनों (अंतिम प्रतिवेदन वर्ष 2024-25 सहित) और राष्ट्रीय स्तर के वित्तीय साक्ष्यों का सूक्ष्म विधिक विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि यह आयोग वर्तमान में कई ऐसे गंभीर संरचनात्मक और विधायी अवरोधों का सामना कर रहा है जो इसके अर्ध-न्यायिक स्वरूप को कमजोर करते हैं। इन विधिक अवरोधों का व्यावहारिक मूल्यांकन निम्नलिखित चार मुख्य आयामों के अंतर्गत किया जा सकता है:

आयोग के आदेशों की सिफारशी प्रकृति का विधिक संकट

आयोग की कार्यप्रणाली की सबसे बड़ी विधायी सीमा इसके अंतिम निर्णयों और आदेशों का 'गैर-

बाध्यकारी' होना है। छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1996 (संशोधित, 2020) की धारा 9 के तहत आयोग को जांच करने और गवाहों को समन जारी करने की अर्ध-न्यायिक शक्तियां तो प्राप्त हैं, परंतु इसके द्वारा राज्य सरकार या स्थानीय प्रशासन को भेजी जाने वाली अंतिम अनुशंसाएं केवल सलाहकारी प्रकृति की होती हैं। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भी *मुंबई पोर्ट अथॉरिटी बनाम राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग* (2026) के अत्यंत हालिया युगांतकारी निर्णय में यह विधिक सिद्धांत पुनः स्थापित किया है कि ऐसे वैधानिक आयोगों की भूमिका अन्वेषणात्मक और सलाहकार की होती है, वे अदालतों या ट्रिब्यूनल की भांति बाध्यकारी और निष्पादनीय न्यायिक आदेश पारित नहीं कर सकते।

इस विधायी स्थिति का छत्तीसगढ़ में अत्यंत नकारात्मक व्यावहारिक प्रभाव पड़ता है। आयोग के वार्षिक प्रतिवेदन (2024-25) के आधिकारिक विधिक साक्ष्य यह उजागर करते हैं कि जिला स्तर पर अल्पसंख्यकों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए आयोग ने सभी जिला कलेक्टरों को अनिवार्य त्रैमासिक बैठकें आयोजित करने की वैधानिक अनुशंसा की थी, परंतु केवल दुर्ग जिले को छोड़कर राज्य के शेष 32 जिलों के स्थानीय प्रशासन ने इस दिशा में कोई अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की।

स्वतंत्र विधिक जांच टीम का अभाव

छत्तीसगढ़ के संवेदनशील अंचलों (जैसे बस्तर और सरगुजा संभाग) में रहने वाले धार्मिक अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों की रक्षा के मार्ग में दूसरा सबसे बड़ा व्यावहारिक अवरोध आयोग के पास अपनी किसी 'स्वतंत्र विधिक जांच टीम' का न होना है।³⁰ वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था के अनुसार, जब सुदूर वनांचलों से अल्पसंख्यक ईसाइयों या मुस्लिमों के सामाजिक बहिष्कार, जल-राशन रोकने या प्रार्थना स्थलों पर हमलों की गंभीर शिकायतें प्राप्त होती हैं, तब जमीनी तथ्यों की निष्पक्ष जांच के लिए आयोग के पास अपना कोई स्वतंत्र पुलिस दस्ता या अनुसंधान विंग उपलब्ध नहीं होता।²¹ परिणामस्वरूप, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत, आयोग को उसी स्थानीय पुलिस और जिला नागरिक प्रशासन से तथ्यात्मक रिपोर्ट मांगनी पड़ती है जिसके विरुद्ध सुरक्षा प्रदान न करने या लापरवाही बरतने की शिकायत दर्ज होती है।

पदों की रिक्तियां और प्रशासनिक अमले की कमी

आयोग के विधिक प्रकोष्ठ में लंबे समय तक रहने वाली पदों की रिक्तियां और अत्यंत सीमित प्रशासनिक ढांचा इसके दैनिक शिकायत निवारण तंत्र को पंगु बना देता है। छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग (संशोधन) अधिनियम, 2020 के तहत इसे एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष और चार सदस्यों का बहु-सदस्यीय निकाय तो घोषित किया गया, परंतु व्यावहारिक रूप से इन अशासकीय पदों पर नियुक्तियां पूरी

तरह से कार्यपालिका के विवेकाधीन क्षेत्राधिकार में होने के कारण कई बार राजनीतिक कारणों से ये पद महीनों खाली रहते हैं।

पूर्ण वित्तीय एवं बजटीय निर्भरता

किसी भी अर्ध-न्यायिक निकाय की वास्तविक स्वायत्तता उसकी वित्तीय स्वतंत्रता पर टिकी होती है। परंतु छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग पूरी तरह से राज्य सरकार के आदिम जाति तथा अनुसूचित जाति विकास विभाग के बजटीय आवंटन पर आश्रित है। 18 वित्तीय वर्ष 2024-25 के आधिकारिक विधिक साक्ष्यों के अनुसार, आयोग के लिए 308.70 लाख रुपये का बजट स्वीकृत किया गया था, जिसमें से प्रशासनिक व विधायी शिथिलताओं (जैसे चुनाव आचार संहिता) के कारण 56.23 लाख रुपये की भारी राशि बिना उपयोग के अभ्यर्पित (सरेंडर) करनी पड़ी।

7. प्रमुख निष्कर्ष

छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग के संदर्भ में मानवाधिकारों के संरक्षण का यह विश्लेषणात्मक, विधिक एवं सांख्यिकीय अध्ययन राज्य की वर्तमान प्रशासनिक व विधायी व्यवस्था के संबंध में कई महत्वपूर्ण प्राथमिक निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। विधि न्यायशास्त्र के स्थापित सिद्धांतों तथा अनुभवजन्य साक्ष्यों के आधार पर इस शोध प्रबंध के माध्यम से जो मुख्य विधिक निष्कर्ष (Findings) प्राप्त हुए हैं, उनका विस्तृत विवरण निम्नलिखित है:

शोध का पहला और सबसे बुनियादी निष्कर्ष यह उजागर करता है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 के तहत प्रदत्त अल्पसंख्यक अधिकारों तथा अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकारों के सैद्धांतिक दावों और क्षेत्रीय धरातल की वास्तविक प्रशासनिक व्यवस्था के बीच एक गंभीर वैधानिक शून्यता (Legal Vacuum) विद्यमान है। राज्य सरकार द्वारा विधायी लोक-नीतियों का निर्माण तो किया गया है, परंतु स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की संवेदनहीनता के कारण हाशिए पर मौजूद अल्पसंख्यक समुदायों तक इन विधिक अधिकारों का पूर्ण लाभ नहीं पहुँच पा रहा है।

सुदूर जनजातीय अंचलों में यह एक अत्यंत गंभीर विधिक निष्कर्ष सामने आया है कि स्थानीय रूढ़िगत ग्राम सभाएं पेसा अधिनियम (PESA Act, 1996) के प्रावधानों की मनमानी व्याख्या करके स्वेच्छा से धर्म बदलने वाले अल्पसंख्यक ईसाई परिवारों का पूर्ण सामाजिक बहिष्कार घोषित कर देती हैं। इन नागरिकों को गांवों के सार्वजनिक कुओं से पानी लेने, राशन दुकानों से अनाज प्राप्त करने, मनरेगा के रोजगार से वंचित करने तथा पैतृक भूमि पर मृतकों को दफनाने से रोकने के बुनियादी मानवीय अधिकारों से विधिक रूप से वंचित किया जा रहा है। विधि न्यायशास्त्र के दृष्टिकोण से यह निष्कर्ष स्थापित होता है कि पेसा

कानून ग्राम सभाओं को अपनी संस्कृति बचाने की शक्ति अवश्य देता है, परंतु वह उन्हें किसी नागरिक के अनुच्छेद 21 के तहत प्राप्त गरिमापूर्ण जीवन जीने के मौलिक मानवाधिकार को छीनने का कोई वैधानिक प्राधिकार नहीं सौंपता।

विगत पांच वर्षों के सांख्यिकीय मूल्यांकन (सारणी 4.1) से यह चिंताजनक निष्कर्ष प्राप्त होता है कि आयोग के शिकायत निवारण कक्ष में प्राप्त कुल 109 मामलों में से सर्वाधिक 74.31 प्रतिशत मामले अकेले मुस्लिम समुदाय से संबंधित हैं, जो विधिक साक्षरता की विषमता को दर्शाता है।¹¹⁸ सबसे महत्वपूर्ण विधिक निष्कर्ष यह है कि आयोग के मामलों के निस्तारण की दर में वर्ष-दर-वर्ष क्रमिक गिरावट आई है, जो वित्तीय वर्ष 2021-22 के 67.85 प्रतिशत से घटकर अंतिम प्रतिवेदन वर्ष 2024-25 में मात्र 56.25 प्रतिशत रह गई है, जिसके कारण न्याय मिलने में अत्यधिक विधिक विलंब हो रहा है।

निस्तारण दर में इस गिरावट का मुख्य विधायी कारण भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *मुंबई पोर्ट अथॉरिटी केस (2026)* में प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुरूप आयोग के अंतिम आदेशों और अनुशंसाओं का केवल सलाहकारी एवं गैर-बाध्यकारी होना है।¹²⁰ इसका प्रत्यक्ष व्यावहारिक प्रमाण छत्तीसगढ़ अल्पसंख्यक आयोग के वार्षिक प्रतिवेदन (2024-25) के इस विधिक साक्ष्य से मिलता है कि जिला स्तर पर अल्पसंख्यकों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए आयोग द्वारा की गई वैधानिक अनुशंसा के बावजूद, केवल दुर्ग जिले को छोड़कर राज्य के शेष 32 जिलों के स्थानीय जिला प्रशासन (कलेक्टर और पुलिस अधीक्षक) ने अनिवार्य त्रैमासिक बैठकों पर कोई अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की। 18,30 दंडात्मक अवमानना की विधायी शक्ति न होने के कारण स्थानीय नौकरशाही आयोग के समन और नोटिसों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर देती है।

एक अन्य महत्वपूर्ण संस्थागत निष्कर्ष यह है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की अर्ध-न्यायिक शक्तियां होने के बावजूद छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग के पास अपनी कोई 'स्वतंत्र विधिक जांच टीम' या पुलिस बल उपलब्ध नहीं है। परिणाम यह होता है कि जब बस्तर के सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में गंभीर मानवाधिकार उल्लंघन की घटनाएं होती हैं, तो आयोग को जमीनी तथ्यों की जांच के लिए उसी स्थानीय पुलिस प्रशासन पर निर्भर रहना पड़ता है जिसके विरुद्ध सुरक्षा प्रदान न करने या लापरवाही बरतने की शिकायत दर्ज होती है। स्थानीय पुलिस अक्सर बहुसंख्यक सामाजिक-राजनीतिक दबाव में आकर गंभीर मानवाधिकार उल्लंघनों को साधारण 'पारिवारिक या भूमि विवाद' बताकर अत्यंत शिथिल रिपोर्ट प्रस्तुत करती है, जिससे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का हनन होता है।

संदर्भ सूची

1. Assink, Marnix. "Inhibitors of disruptive innovation capability: a conceptual model." *European journal of innovation management* 9.2 (2006): 215-233.
2. Brown, Larry T., and Robert F. Stanners. "The assessment and modification of concept interrelationships." *The Journal of experimental education* 52.1 (1983): 11-21.
3. Morgan, Jessica, and Oliver Robinson. "Intrinsic aspirations and personal meaning across adulthood: Conceptual interrelations and age/sex differences." *Developmental psychology* 49.5 (2013): 999.
4. Samsiah, Siti, et al. "Interrelationship Among Business Units and Private University Performance: A Conceptual Framework." *JIMEK: Jurnal Ilmiah Mahasiswa Ekonomi* 5.2 (2022): 198-213.
5. Levine, Sol, and Paul E. White. "Exchange as a conceptual framework for the study of interorganizational relationships." *Administrative science quarterly* (1961): 583-601.
6. Singh, Ram Lochan. *Bharatiya Rajsatta: Kitni Samvaidhanik: BHARATIYA RAJSATTA: KITNI SAMVAIDHANIK: The Constitution and Its Impact on India's Political and Social Development by RAM LOCHAN SINGH*. Prabhat Prakashan, 2020.
7. Pickerill, J. Mitchell. *Constitutional deliberation in congress: The impact of judicial review in a separated system*. Duke University Press, 2004.
8. Schapiro, Robert A. "Judicial deference and interpretive coordinacy in state and federal constitutional law." *Cornell Law Review* 85.3 (2000): 656.
9. Ferejohn, John, and Pasquale Pasquino. "Towards an Institutional Theory of Constitutional Justice." *Constitutional justice, east and west: democratic legitimacy and constitutional courts in post-communist Europe in a comparative perspective* 62 (2002): 21.
10. Vanberg, Georg. "Legislative-judicial relations: A game-theoretic approach to constitutional review." *Am. J. Pol. Sci.* 45 (2001): 346.
11. Cushman, Robert E. "Constitutional Status of the Independent Regulatory Commissions." *Cornell LQ* 24 (1938): 13.
12. Bernstein, Marver H. *Regulating business by independent commission*. Princeton University Press, 2015.
13. Kenny, Susan. "The Law Commissions: constitutional arrangements and the rule of law." *Oxford Journal of Legal Studies* 39.3 (2019): 603-623.

14. Makartsev, A. A. "Election Commissions as Juridical Persons: Problems of Legal Status." *Russ. Jurid. J.* (2011): 104.
15. Dyson, Matthew, James Lee, and Shona Wilson Stark, eds. *Fifty years of the Law Commissions: the dynamics of law reform.* Bloomsbury Publishing, 2016.
16. Kohli, Neha, et al. "The role of the state government, civil society and programmes across sectors in stunting reduction in Chhattisgarh, India, 2006–2016." *BMJ global health* 5.7 (2020).
17. Adhikari, Anindita, and Vasudha Chhotray. "The political construction of extractive regimes in two newly created Indian states: A comparative analysis of Jharkhand and Chhattisgarh." *Development and Change* 51.3 (2020): 843-873.
18. Chhotray, Vasudha, Anindita Adhikari, and Vidushi Bahuguna. "The political prioritisation of welfare in India: comparing the public distribution system in Chhattisgarh and Jharkhand." (2018).
19. Kumar, Dharmendra. "Constitution of a Region: A Study of Chhattisgarh." *Rethinking State Politics in India.* Routledge India, 2016. 76-106.
20. Singh, Ajad, and Anushka Rai. "Evaluating human development trends in Chhattisgarh after economic reforms in India." *Int J Res Publ Rev* 4.11 (2023): 1529-35.
21. Sharma, Samir, Chandrani Dutta, and Sejuti Das Gupta. "Is 'Recognition' an End in Itself? The Case of New State-formation in Chhattisgarh and Jharkhand." *Contradictions of Democracy, Development and Inequality.* Routledge India, 2025. 53-68.

वेबसाइट स्रोत

- <https://tribal.cg.gov.in/>
- <https://www.minorityaffairs.gov.in/>
- <https://ncm.nic.in/>
- <https://ncmei.gov.in/>
- <https://hnlu.ac.in/>
- <https://nalsar.ac.in/>
- <https://www.ecchr.eu/>
- <https://www.hrw.org/>
- <https://www.ohchr.org/>